विज्ञान शिक्षा और भाषा के प्रश्न

– साधना सक्सेना

इस पर्चे में भाषा सम्बन्धी व्यापक मुद्दों जैसे भारत में भाषायी विविधता, उसकी राजनीति और औपनिवेशीकरण के कारण अंग्रेज़ी के वर्चस्व के सन्दर्भ में विज्ञान शिक्षण की भाषा को समझने का प्रयास किया गया है। वहीं दूसरी ओर 'विज्ञान की भाषा' और 'विज्ञान में भाषा' जैसे शीर्षकों के तहत तकनीकी भाषा की ज़रूरत और इसके बनने के इतिहास को भी प्रस्तुत किया गया है। इस सन्दर्भ में अन्य अन्तर्राष्ट्रीय भाषाओं जैसे रूसी, जापानी, जर्मन, स्पेनिश, चीनी इत्यादि में वैज्ञानिक शोध लेखन के लम्बे इतिहास के बावजूद भी तत्कालीन समय में अंग्रेज़ी के उभरते हुए वर्चस्व पर भी चर्चा की गयी है। लेखिका के लिए भारतीय भाषाओं में विज्ञान शिक्षण सिर्फ व्यवहारिक प्रश्न नहीं है वरन इसमें सिद्धान्त के प्रश्न भी शामिल हैं।

यह पर्चा तीन भागों में विभाजित है। पहले भाग में, संक्षेप में, भारत की भाषायी विविधता, संवैधानिक भाषाएँ, मातृभाषा व स्कूली शिक्षा और उच्च शिक्षा में अंग्रेज़ी माध्यम पर ज़ोर इत्यादि मुद्दों पर चर्चा की गयी है। इसके साथ ही, उच्च शिक्षा को बहुभाषी बनाने की सिफ़ारिश व रोज़गार तथा सामाजिक – आर्थिक गतिशीलता के लिए अंग्रेज़ी माध्यम की बढ़ती माँग को समझने की कोशिश की गयी है।

पर्चे के दूसरे भाग में विज्ञान पढ़ने/ पढ़ाने की भाषा से सम्बन्धित मुद्दों को उठाया गया है जैसे, विज्ञान की शिक्षा किस भाषा में होना बेहतर है विशेषकर, सीखने और ज्ञान के सृजन व सम्प्रेषण की दृष्टि से। वर्तमान की वास्तविकता क्या है, विज्ञान के ज्ञान सृजन में, शोध पत्रों के छपने इत्यादि में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बढ़ते अंग्रेज़ी के वर्चस्व के क्या परिणाम हैं?

पर्चे के तीसरे भाग में तीन मसलों पर चर्चा की गयी है। पहला, भाषा मात्र ज्ञान के संप्रेषण का उदासीन माध्यम नहीं है। विज्ञान में भाषा की भूमिका ज़्यादा जटिल (Complex) है। जैसे, संकल्पनाओं के अधिग्रहण में भी भाषा की अहम भूमिका है। दूसरा, भाषा के रोज़मर्रा के शब्द जब विज्ञान में लाये जाते हैं तो उनका अलग और ख़ास अर्थ होता है। रोज़मर्रा के अर्थ से बिल्कुल भिन्न होने के कारण कई बार वैज्ञानिक संकल्पना समझने में उलझन भी पैदा हो सकती है। तीसरा, यह भी समझना

ज़रूरी है कि विज्ञान की शब्दावली (Terminology) विज्ञान के विकास के साथ–साथ ही विकसित होती है। इसलिए ऐसी भाषाएँ जिनमें विज्ञान का विकास नहीं हुआ पर आज उन भाषाओं में वैज्ञानिक ज्ञान को अनूदित किया जा रहा है, शब्दावली का अनुवाद दिक़्क़त पैदा करता है। इस भाग में इन्हीं विषयों पर चर्चा की गयी है।

भाग 1 : भारत में भाषायी मसले

शैक्षिक अनुभवों ने यह दिखाया है कि बच्चों की शुरुआती शिक्षा मातृभाषा में ही होनी चाहिए। बुनियादी शिक्षा के सन्दर्भ में महात्मा गाँधी ने यह बात बहुत पहले ही कही थी। स्कूली शिक्षा पर गठित समितियों और कमीशनों में भी इसकी सिफ़ारिश की गयी। नेशनल करिकुलम फ्रेमवर्क (NCF:1-3, 2005) में भी इस पर ज़ोर दिया गया है। विभिन्न अकादमिक शोधों में भी इस बात की पुष्टि की है कि प्राथमिक और पूर्व प्राथमिक स्तर की कक्षाओं में पढ़ाई का माध्यम मातृभाषा ही होना चाहिए (बाल,2011)। इसके बावजूद विभिन्न आर्थिक, व्यवहारिक और बाज़ार में अंग्रेज़ी के बढ़ते प्रभाव जैसे कारणों के चलते वास्तविकता में ऐसा हुआ नहीं है।

इसके विपरीत उच्च शिक्षा, ख़ास तौर से महाविद्यालयीन और विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा किस भाषा में हो इसको लेकर इतनी स्पष्टता नहीं रही है। उच्च शिक्षा में ज्ञान हासिल करने के साथ–साथ ज्ञान का सृजन व शोध करना और पढ़ कर सीखने में आत्मनिर्भर होना भी अपेक्षित है। इसलिए ऐसी भाषा/भाषाओं में पारंगत होना ज़रूरी हो जाता है जिसमें/ जिनमें अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का ज्ञान और शोध उपलब्ध हो। ऐतिहासिक कारणों से भारत में यह भाषा अंग्रेज़ी है।

उच्च शिक्षा का एक अन्य अहम उद्देश्य एक ऐसे इन्सान का निर्माण भी है जो भाषा, राष्ट्र इत्यादि जैसी हदें पार कर अपनी समझ और विश्वदृष्टि बनाने में सक्षम होगा। पर, इसी विमर्श में भाषा से जुड़े कई और मसले भी गुँथे हुये हैं। जैसे, भाषा मात्र एक साधन या माध्यम नहीं है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री सतीश देशपाण्डे के शब्दों में कहें तो, "भाषा मूक (inert) नहीं है, वह विचारों को और विश्वदर्शन (worldview) को आकार भी देती है (केन्द्रीय शिक्षा संस्थान, वक्तव्य, 5.9.19)।'' यानि, भाषा एक वाहन नहीं है जिस पर चढ़ कर ज्ञान का प्रसार होता है। भाषा के प्रश्न ज्ञान के सृजन और प्रसार के अलावा लोगों की संस्कृति, अस्मिता, सामाजिक हैसियत, राष्ट्रीयता और बाज़ार की माँग जैसे मुद्दों से भी गहरायी से जुड़े हैं। किसी भी विषय के अकादमिक विमर्श से जुड़ने और उस विषय को उच्च स्तर पर पढ़ने–पढ़ाने की औपचारिक भाषा क्या हो इन प्रश्नों से जूझने के लिए उपरोक्त सभी मुद्दों को ध्यान में रखना या उनके

सन्दर्भ में सोचना भी ज़रूरी होगा। उदाहरणार्थ उच्च शिक्षा में विज्ञान पढ़ाने की भाषा अंग्रेज़ी हो, पर कक्षाओं में संवाद की भाषा स्थानीय भाषाएँ हों, क्या यह एक अच्छी नीति/रणनीति हो सकती है? यह कैसे तय होगा और कौन तय करेगा?

ऐतिहासिक सन्दर्भ में अंग्रेज़ी

बहुत बार यह प्रश्न पूछा जाता है कि जापान, चीन, रूस या कोरिया जैसे देशों में विज्ञान वहीं की भाषाओं में कैसे विकसित हुआ और पढ़ाया भी जाता है?[11] भारत में ऐसा क्यों नहीं हुआ व क्या आज यह सम्भव है? इन प्रश्नों का उत्तर ढूँढ़ने के लिए निम्नलिखित मसलों की ओर ध्यान देने की ज़रूरत है :

- रूस, चीन, जापान या कोरिया से अलग भारत एक औपनिवेशिक देश रहा है (शुक्ला, 1996)। आधुनिक स्कूली और उच्च शिक्षा के उदय, प्रसार और विकास में औपनिवेशिक सरकार और उसकी नीतियों का बड़ा हाथ रहा है (देसाई, 1976)। इसलिए औपनिवेशिक सरकार की ज़रूरतों के अनुसार शिक्षा की भाषा तय हुई। औपचारिक शिक्षा का प्रसार और अंग्रेज़ी माध्यम, औपनिवेशिक राज्य के निम्न स्तरीय प्रशासनिक अधिकारियों की जरूरतों से जुड़े थे। इसने अंग्रेज़ी के महत्व को पुख़्ता किया।
- आज़ादी के पहले राजा राम मोहन राय जैसे नेताओं ने भी उच्च शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी रखने की पैरवी की थी (नायक और नरूला 1976)। वहीं मिश्रा (2007) अपने निबन्ध 'नेहरू एण्ड द लैंग्वेज क्वेश्चन' में लिखते हैं कि उन्नीसवीं सदी के नेता जैसे बाल गंगाधर तिलक, साहित्यकार जैसे प्रेमचन्द, भाषाविद जैसे सुनीति कुमार चटर्जी सभी ने एक राष्ट्र एक भाषा की ज़ोरदार पैरवी की। हालाँकि स्वतन्त्रता से पहले कई राष्ट्रवादियों का ज़ोर भारतीय भाषाओं में शिक्षा देने का रहा था परन्तु स्वतन्त्रता के बाद इनका रुख़ भी बदला था। इन्हीं में से कई नेताओं ने शिक्षा का माध्यम, प्रारम्भिक शिक्षा के बाद, अंग्रेज़ी रखने की पैरवी की (नायक और नरूला, 1976)। इसके मिश्रित कारण रहे होंगे जैसे

[1] यहाँ आज के सन्दर्भ में एक अन्य बात नोट करना भी ज़रूरी है। ट्रअनर–कोरास (2005) के लेख के अनुसार असल में अब हर देश के अधिकतर वैज्ञानिकों के द्वारा शोध प्रपत्र अंग्रेज़ी में ही छपवाए जा रहे हैं। वे लिखते हैं कि 2012 के एक अध्ययन में यह पाया गया कि 239 देशों के 21,000 प्रपत्रों में से 80 प्रतिशत पूरी तरह से अंग्रेज़ी में थे। इसका एक सबसे महत्वपूर्ण कारण है कि अंग्रेज़ी में न लिखे जाने पर शोध पत्रों की पहुँच बहुत सीमित हो जाती है।

अंग्रेज़ी का रुतबा, पूरे देश में संवाद की सहूलियत, ज्ञान और रोज़गार का ज़रिया इत्यादि।

- यह तथ्य भी ध्यान में रखना ज़रूरी है कि स्वतन्त्रता के पूर्व से ही भारत का अभिजात और प्रभुत्व वर्ग विज्ञान, प्रौद्योगिकी और कानून की उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए विदेशी विश्वविद्यालयों ख़ासतौर से इंग्लैंड में पढ़ने जाता रहा। इस वर्ग के बच्चे स्वतन्त्रता–पूर्व से ही अभिजात पब्लिक स्कूलों में पढ़े जिसका महत्व हमेशा समाज के हर क्षेत्र में हावी रहा। इन सभी कारकों से अंग्रेज़ी भाषा की जड़ें औपचारिक शिक्षा और प्रशासन में आज़ादी से पहले ही गहरी हो चुकी थीं।
- मिश्रा (2007) लिखते हैं कि 19वीं सदी में भारत की क्षेत्रीय भाषाओं का तेज़ी से विकास हुआ। उसमें उत्कृष्ट साहित्य का सृजन हुआ, शब्दकोष बने, मानकीकरण हुआ और बुद्धिजीवियों का अपनी भाषा से जुड़ी अस्मिता का निर्माण हुआ। इस प्रकार जहाँ राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत की भाषा के रूप में अंग्रेज़ी का आधिपत्य रहा वहीं क्षेत्रीय स्तर पर क्षेत्रीय भाषाओं का।

पर इतना ही महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि अन्य देशों की तुलना में भारत भाषायी दृष्टि से एक अत्यन्त समृद्ध, जटिल और चुनौतीपूर्ण क्षेत्र रहा है। विभिन्न क्षेत्रों की अभिजात वर्ग की भाषाएँ और आमजनों, मज़दूरों, किसानों की भाषाएँ भी अलग–अलग रही हैं और उनमें सत्ता–असन्तुलन रहा है। मेहनतकश लोगों की भाषाएँ, जो आमतौर पर मुखाग्र, पर सम्पन्न भाषाएँ रहीं वे उनके बोलने वालों की तरह ही पीछे छूटती रही हैं। अनेक भाषा–विशेषज्ञों और शिक्षाशास्त्रियों ने इन मसलों पर शोध किया है और विविधता को चुनौतीपूर्ण, पर सांस्कृतिक समृद्धि का स्रोत भी माना है (कृष्णा, 1991; गुप्ता और अब्बी 1995)।

- नीतिगत दृष्टि से, स्वतन्त्रता के बाद, साठ के दशक में काफ़ी जद्दोजहद के बाद, जब हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का प्रयास हुआ तो ख़ासतौर से दक्षिण के राज्यों में इसका विरोध हुआ। 1963 में तमिलनाडु में तो विरोध हिंसक भी हुआ और स्पष्ट हुआ कि भारत जैसे देश में कोई एक राष्ट्रीय भाषा थोपी नहीं जा सकती (मिश्रा, 2007)। इस तीखी प्रतिक्रिया के बाद भाषायी आधार पर राज्यों के पुनर्गठन ने कुछ शान्ति स्थापित की जिससे न केवल क्षेत्रीय भाषाओं

(अस्मिता) का रुतबा बढ़ा, वरन वे राज्य स्तर पर कामकाज की भाषाएँ भी बनीं (बोरीस 1986; मिश्रा, 2007)।

- साथ ही संविधान सभा (Constituent Assembly) के निर्णय ने कि अगले कुछ वर्षों तक एक राष्ट्रभाषा विकसित की जायेगी और संविधान लागू होने की तारीख से 15 सालों तक अंग्रेज़ी सम्पर्क–भाषा के रूप में स्वीकृत मानी जायेगी, उस समय के संकट को टाला। वैसे, अनौपचारिक रूप से, अंग्रेज़ी का एक सम्पर्क भाषा के रूप में रुतबा इस औपचारिक निर्णय से पहले बन चुका था। पन्द्रह वर्षों के बाद यानि 1965 आने तक अंग्रेज़ी की पैठ और गहरी हुई और सम्पर्क भाषा बनाये रखने का फैसला 10 साल तक बढ़ा दिया गया था। यह वह समय था जब नेहरू, जिन्होंने हिन्दुस्तानी को राष्ट्रभाषा बनाने की पैरवी की थी, इस दुनिया से जा चुके थे और राष्ट्रभाषा का मसला अनसुलझा ही रहा। अंग्रेज़ी की बखत वास्तव में बढ़ती गयी। आज सामाजिक गतिशीलता के लिए अंग्रेज़ी भाषा पर पकड़ एक आवश्यकता बन गयी है।
- भारत की भाषायी विविधता के चलते 1964 में बने राष्ट्रीय शिक्षा आयोग ने, जिसे आमतौर पर कोठारी आयोग कहा जाता है, 'त्रिभाषा सूत्र' की नीति प्रस्तावित की थी। इसके अन्तर्गत हर स्कूली विद्यार्थी से अपेक्षित था कि वह अपनी क्षेत्रीय भाषा के अलावा कम–से–कम एक अन्य क्षेत्रीय भाषा सीखेंगे। इस सूत्र के भाषायी विकल्पों में संस्कृत को शामिल कर देने के बाद ज्यादातर हिन्दी भाषियों ने कोई भी अन्य क्षेत्रीय भाषा, ख़ासतौर से दक्षिण भारतीय भाषा, नहीं सीखी। कोठारी आयोग के बाद आई हर शिक्षा नीति में त्रिभाषा सूत्र को शामिल किया गया परन्तु पठन सामग्री, शिक्षकों की कमी और आर्थिक अवरोधों के कारण इसके अपेक्षित परिणाम नहीं मिले। इसके अलावा, त्रिभाषा सूत्र की भाषा नहीं होते हुये भी अंग्रेज़ी का महत्व बढ़ता ही गया।

गुप्ता आदि (1995) के अनुसार भारतीय भाषाओं की सत्ता और हैसियत का अनुक्रम बनाने में संविधान के आठवें अनुच्छेद की भी अहम भूमिका रही है। इस अनुच्छेद में भारत की सैकड़ों भाषाओं में से चुन कर पहले मात्र 14 और फिर बढ़ा कर 22 भाषाओं को सरकारी मान्यता दी गयी। पहले दौर के बाद, स्थानीय संघर्षों के परिणामस्वरूप, 8 अन्य भाषाओं को संवैधानिक मान्यता मिली और उन्हें भी संविधान के आठवें अनुच्छेद में शामिल किया गया। भाषाविज्ञानी गुप्ता और अब्बी (1995) लिखती हैं कि हालाँकि

इस मान्यता के मिलने से आर्थिक उपलब्धि मात्र कुछ लाख रुपयों की ही होती थी, परन्तु इससे भाषा का रुतबा, सत्ता और ताकत बढ़ती है। साथ ही संवैधानिक रूप से मान्य भाषा सरकारी कामकाज और शिक्षा की भाषा भी बनती है। इसी सन्दर्भ में अग्रवाल (1995) कहते हैं कि पहले उन्हें आश्चर्य होता था कि उनके राज्य मणिपुर में मणिपुरी भाषा को आठवें अनुच्छेद में शामिल करने को ले कर इतने आन्दोलन क्यों होते रहे और मणिपुरी भाषा के इसमें शामिल होने के बाद भी आन्दोलन क्यों जारी रहे? उन्हें इस वस्तुस्थिति के कारण भाषा को ले कर उससे जुड़े व्यापक दायरे को समझने की ज़रूरत हुई जो न केवल अस्मिता और संस्कृति जैसे मसलों से जुड़ी है, बल्कि संसाधनों पर नियन्त्रण, न्याय, गैर–बराबरी और सत्ता के असन्तुलन जैसे बुनियादी मसलों से भी जुड़ी है (अग्रवाल, 1995)। उनके अनुसार, "इस फ्रेमवर्क से देखने पर 1652 मातृभाषाओं वाला यह देश 'एक सामाजिक भाषायी दैत्य (a sociolinguistic giant)' या 'एक भाषायी पागलखाना' नहीं दिखेगा, बल्कि समृद्ध भाषायी विविधता में शायद वैकल्पिक विश्वदर्शन, सामाजिक न्याय का एहसास और अपने प्राकृतिक और सांस्कृतिक पर्यावरण के साथ सामंजस्य बना कर जीने का स्रोत दिखेगा।" (222)।

भाषा और संस्कृति व अस्मिता के मसलों की गहरी समझ के बावजूद उच्च स्तरीय शिक्षा पर बने राधाकृष्ण कमीशन (1948–49) ने भी महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में शिक्षा के लिए अंग्रेज़ी माध्यम और बाद में धीरे–धीरे क्षेत्रीय भाषाओं में शिक्षण करने की सिफ़ारिश की थी। कोठारी आयोग (1964–66) ने स्कूली शिक्षा क्षेत्रीय भाषाओं में करने की सिफ़ारिश की थी। शायद इसके फलस्वरूप और उच्च शिक्षा के प्रसार के कारण, अस्सी का दशक आते–आते उच्च शिक्षा का माध्यम एक भाषायी, जो अंग्रेज़ी होती थी, से बदल कर दो या बहुभाषायी होना शुरू हुआ (जयराम, 1993)। परन्तु जयराम यह भी बताते हैं कि इंजिनियरिंग, विज्ञान और औषधि–विज्ञान की शिक्षा में अंग्रेज़ी का ही आधिपत्य रहा। यह भी स्पष्ट था कि कला और मानविकी के विद्यार्थियों की तुलना में विज्ञान, प्रौद्योगिकी और सम्बन्धित विषयों के विद्यार्थियों ने भी हिन्दी या अन्य क्षेत्रीय भाषाओं को ज्यादा महत्व नहीं दिया। अंग्रेज़ी के महत्व को, जयराम के अनुसार, रोज़गार और गतिशीलता की चिन्ताओं से अलग कर के नहीं देखा जा सकता था। रोचक बात यह है कि अंग्रेज़ी संवैधानिक रूप से आठवें अनुच्छेद में भी शामिल भाषा नहीं है। आठवें अनुच्छेद के कारण राज्य सरकारें, केन्द्रीय सरकार से, आधिकारिक रूप से अपनी क्षेत्रीय भाषाओं में पत्राचार कर सकती हैं। परन्तु व्यवहारिक वास्तविकता यह है कि उन पर कार्यवाही तभी होती है जब या तो ऐसे पत्रों/रपटों

को अंग्रेज़ी में अनूदित किया जाये या अंग्रेज़ी में ही लिखवाया जाये। तो, ऐतिहासिक रूप से अंग्रेज़ी का रुतबा और ताकत संवैधानिक भाषाओं से ऊपर ही रहा है चाहे वह मात्र सम्पर्क–भाषा ही मानी गयी। फलस्वरूप, कम–से–कम उच्च शिक्षा में, विज्ञान की पढ़ाई का माध्यम, ख़ासतौर से दक्षिण के राज्यों में, अंग्रेज़ी ही रहा।

ऐसे बहुभाषी भूभाग में, जहाँ अंग्रेज़ी की गहरी विरासत है, उच्च शिक्षा के स्तर पर विज्ञान किस भाषा में पढ़ाया जाना चाहिए, यह एक उलझा हुआ प्रश्न है। मसला जहाँ एक तरफ विज्ञान के विषयों को अपनी भाषा में पढ़ने से समझ गहरी होने की सम्भावनाओं का है, तो वहीं दूसरी तरफ रोज़गार के मौक़ों, ज्ञान हासिल करने व शोध की सम्भावनाओं और अकादमिक स्रोतों की अपर्याप्तता जैसी वास्तविकताएँ भी सामने हैं।

भाग 2 : उच्च शिक्षा में विज्ञान पढ़ने की भाषा : सम्बन्धित प्रश्न और विमर्श

ऐसी भाषायी विविधता के सन्दर्भ में उच्च स्तरीय विज्ञान और प्रौद्योगिकी की भाषा कौन–सी हो, इस प्रश्न का कोई सीधा और आसान उत्तर नहीं है। इस मसले से जुड़े कई महत्वपूर्ण प्रश्न इस प्रकार हैं रु

- क्या यह मात्र एक व्यावहारिक प्रश्न है या इसमें गहरे सैद्धान्तिक मसले भी जुड़े हैं?
- विज्ञान की पढ़ाई किन भाषाओं में हो, क्या इस प्रश्न को अन्य विषयों की पढ़ाई की भाषा से जोड़े बिना समझा जा सकता है?
- क्या विज्ञान की भाषा का मसला विज्ञान के विकास, पूँजीवाद औपनिवेशिक इतिहास और उससे जुड़ी अंग्रेज़ी की हैसियत और प्रभुता, आमजनों का विश्वदर्शन इत्यादि से अलग कर के समझा जा सकता है?
- क्या अधिक से अधिक पठन/स्रोत सामग्री 'अपनी भाषा' या क्षेत्रीय भाषाओं या आठवें अनुच्छेद की भाषाओं में उपलब्ध कराने से ही भारत में विज्ञान और प्रौद्योगिकी की शिक्षा का लोकतन्त्रीकरण सम्भव है?
- क्या इससे भारत में विज्ञान के मौलिक शोध का स्तर ऊँचा होगा क्योंकि इससे विषय की समझ बन पाने की सम्भावनाएँ बढ़ेंगी?
- क्या भारत जैसे भाषायी विविधता वाले देश में स्कूली और उच्च शिक्षा, एक भाषी की जगह बहुभाषी होना आवश्यक नहीं है?

जहाँ तक विषय की समझ गहरी होने की बात है दो–तीन अनुभवों के आधार पर इस पर प्रकाश डाल सकते हैं। प्रसिद्ध समाज वैज्ञानिक जर्नल इकनॉमिक एण्ड पोलिटिकल वीकली का हिन्दीकरण करने का एक प्रयास करीब तीन दशक पहले किया गया था। इस कार्य में अनेकों बाधाएँ आयीं। हिन्दी में लिखे मौलिक लेख नहीं मिले और अंग्रेज़ी जर्नल के शोधपत्रों और लेखों को हिन्दी में अनूदित कर साँचा नामक जर्नल निकाला गया।

साँचा निकालने का प्रयास आर्थिक और अन्य कारणों से बन्द किया गया। एक महत्वपूर्ण कारण यह था कि साँचा उन्हीं ने पढ़ा जो ई.पी.डब्ल्यु. अंग्रेज़ी में पढ़ते थे। इसलिए पाठक आधार का विस्तार नहीं हो पाया। यह बावजूद इसके कि उच्च शिक्षा में इतिहास, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान इत्यादि की हिन्दी पठन–सामग्री की माँग हमेशा रही है। ग्रन्थशिल्पी और अन्य कई प्रकाशकों के माध्यम से जाने–माने इतिहासकारों की किताबें हिन्दी में उपलब्ध हुयीं। इनसे कितने लोगों ने लाभ उठाया यह समझना ज़रूरी है और यह भी कि साँचा की असफलता का कारण क्या इसमें शोध आधारित पर्चों की बहुतायत थी? क्या उनकी हिन्दी कठिन थी? या यह क्यों माना जाता है कि कोई भी परिकल्पना या सिद्धान्त हिन्दी में पढ़ने से तुरन्त समझ में आ जाना चाहिए, वरना वह परिकल्पना की कठिनता का प्रश्न न हो कर अनुवाद की गलती मान ली जायेगी। जैसे, 'हिन्दी में ज़्यादा कठिन शब्द थे।'

दिल्ली विश्वविद्यालय जैसे केन्द्रीय संस्थान में हिन्दी क्षेत्रों से आने वाले समाजशास्त्र के विद्यार्थियों की ज़रूरतों को पिछले 15–20 वर्षों से समझा गया और न केवल पठन–सामग्री, वरन परीक्षा का माध्यम और कक्षा की पढ़ाई की भाषा काफ़ी हद तक द्विभाषी हुई। परन्तु यह परिवर्तन विज्ञान और गणित विषयों में नहीं हुआ। हिन्दी क्षेत्र से आये विद्यार्थी, अपने–अपने राज्यों में विज्ञान हिन्दी में ही पढ़ते हैं। यदि ऊपर लिखित अन्तिम तीन प्रश्नों का उत्तर 'हाँ' में है तो फिर प्रश्न यह है कि ऐसा विज्ञान में क्यों नहीं हुआ? आखिर विज्ञान और गणित विषयों में ऐसा भाषायी परिवर्तन या इसकी माँग महाविद्यालयीन विद्यार्थियों से भी क्यों नहीं आयी?

गुणाकर मुले ने विज्ञान के विभिन्न विषयों पर गहन शोध आधारित उम्दा गुणवत्ता की दसियों पुस्तकें हिन्दी और मराठी भाषा में लिखी हैं। इसी प्रकार, कुछ वर्षों पहले, वैज्ञानिकों और समाजशास्त्रियों के एक समूह ने 'संधान' नाम से एक पत्रिका निकाली थी जिसमें विज्ञान के दर्शनशास्त्र (Philosophy of Science) और प्रबोधन

(Enligtenment) सम्बन्धी बहुत से उम्दा लेख छापे गये। पर हिन्दी की इस प्रकार की स्रोत–सामग्री किसी भी उच्च शिक्षा संस्थान के कोर्सों की पठन सूची में शामिल नहीं की गयी। हम में से कितने लोग जानते हैं कि भौतिकशास्त्री और राजनीतिज्ञ, रवि सिन्हा की हिन्दी में 'रिलेटीविटी' पर लिखी पुस्तक इस विषय की बेहतरीन कृतियों में से एक है? शायद उन्होंने भौतिकशास्त्र के अन्य विषयों पर भी हिन्दी में किताबें लिखीं, पर कभी भी महाविद्यालयी या विश्वविद्यालयी शिक्षकों को भौतिकी की समझ बेहतर करने के लिए इनकी ज़रूरत नहीं दिखी। अक्सर विज्ञान के विद्यार्थी यह कह भी बात ख़त्म कर देते हैं कि विज्ञान हिन्दी में समझ में नहीं आता और न ही पढ़ाया जा सकता है। परन्तु समझना यह ज़रूरी है कि सवाल विज्ञान ही न समझ पाने का है, जिसे भाषा का मुद्दा बना कर बचने का रास्ता ढूँढ़ लिया जाता है, या ख़राब अनुवाद का? मुख्यधारा यानी महाविद्यालयी स्तर की शिक्षा के लिए यदि हिन्दी भाषा में पठन–पाठन सामग्री उपलब्ध हुई भी तो उसकी गुणवत्ता पर हमेशा सवाल रहे। यानी कम–से–कम 'हिन्दी क्षेत्र' के नाम से पहचाने जाने वाले इलाक़ों के उच्च स्तरीय शिक्षा संस्थानों में कक्षा में पढ़ाई हिन्दी में (या अन्य राज्यों में उड़िया, बंगाली, आसामी या पंजाबी) यदि हुई भी तो उसकी गुणवत्ता पर हमेशा प्रश्न रहे। हालाँकि यह भी सही है कि मुद्दा मात्र भाषा का ही नहीं है। विज्ञान की पढ़ाई के लिए शिक्षकों और प्रयोगशालाओं का न होना या ख़राब होना भी एक महत्वपूर्ण मसला है।

इतना ही महत्वपूर्ण मसला है ज्ञान के लोकतन्त्रीकरण का और विषय की समझ गहरी होने का है। हालाँकि प्रश्न यह भी है कि विज्ञान की उच्च शिक्षा हिन्दी या अन्य भाषाओं में होगी तो ऐसे लोगों को नौकरियाँ कैसे मिलेंगी? वस्तुतः आज़ादी के बाद से हर क्षेत्र में, शायद साहित्य को छोड़ कर, अंग्रेज़ी की पैठ गहरी हुई है। इसके ऐतिहासिक कारण हैं, जिनको पलटना सम्भव नहीं है। जैसा ऊपर कहा गया है कि औपनिवेशिक सरकार के कारण स्वतन्त्रता से पूर्व ही अंग्रेज़ी एक सम्पर्क–भाषा, सत्ता/रूतबे की भाषा, उच्च शिक्षा की भाषा, प्रशासन की भाषा और विद्वत अकादमिक विमर्श की भाषा के रूप में स्थापित हो चुकी थी। मिश्रा विस्तार से बताते हैं (मिश्रा, 2007) कि स्वतन्त्रता के बाद भारत में हिन्दी या हिन्दुस्तानी को राष्ट्रभाषा बनाने के प्रयास हुये, जो असफल रहे। इस इतिहास के मद्देनज़र और वर्तमान वास्तविकता के तहत क्यों उच्च शिक्षा बहुभाषीय या कम से कम द्विभाषी नहीं हो? क्या मात्र अनुवादों पर निर्भरता पठन–सामग्री के विकल्पों को सीमित नहीं करती है और अनुवाद के लिए सामग्री का चुनाव करने वालों पर निर्भरता बढ़ाती है? क्षेत्रीय भाषाओं में विज्ञान पर

लिखना, विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय भाषाओं के ज्ञान को भारतीय भाषाओं में उपलब्ध करवाना इत्यादि उतना ही ज़रूरी है जितना सभी को अंग्रेज़ी सीखने के मौक़े मिलना।

भाग 3 : विज्ञान में भाषा की भूमिका

भाषाविदों ने भाषा और विचार (लैंग्वेज एण्ड थॉट) पर गहराई से शोध किया है और लिखा है। इस आधार पर यह स्पष्ट है कि भाषा ज्ञान और विचारों को सम्प्रेषित करने का माध्यम या वाहन मात्र नहीं है। और न ही भाषा ज्ञान और विचारों को कोड में बदलने के संकेत मात्र हैं। पढ़ने और लिखने की प्रक्रिया में हर व्यक्ति गहराई से सोचता है, संकल्पनाएँ ग्रहण करने और अर्थ की रचना करने में जूझता है। वैज्ञानिक संकल्पनाओं के अधिग्रहण में भाषा की अहम भूमिका होती है। फोर्ड और डेविड पीट (1988) अपने शोध 'विज्ञान में भाषा की भूमिका' में लिखते हैं कि कैसे भाषा का असंवेदनशील उपयोग वैज्ञानिक सृजनात्मकता के लिए बाधक हो सकता है। वे यह भी दिखाते हैं कि वैज्ञानिकों का एक तरह से भाषा का उपयोग कैसे एक ख़ास तरह का विश्वदर्शन सामने लाता है। वे तर्क करते हैं कि जैसे दृश्य (Vision) दुनिया गढ़ते हैं उसी प्रकार भाषा दिमाग में चित्र गढ़ती है। वे यह भी कहते हैं कि इन्सान को सम्प्रेषण के लिए भाषा का उपयोग करना होता है और इसीलिए हमें भाषा की सत्ता और सीमाओं के प्रति सावधान रहना चाहिए।

इसी तारतम्य में एक दूसरा मसला है रोज़मर्रा के शब्दों को विज्ञान में लाने का है। ऐतिहासिक रूप से, विज्ञान के विकास के साथ–साथ, आम शब्दों का विज्ञान में आने का सिलसिला चलता है और इस तरह वैज्ञानिक शब्दावली विकसित होती है और हुई है। विज्ञान में इन शब्दों के अर्थ रोज़मर्रा के शब्दों से भिन्न और ख़ास होते हैं। इतिहास के सन्दर्भ से अलग, वर्तमान में, जब ऐसी शब्दावली अनूदित की जाती है तो उसके रोज़मर्रा के अर्थ और वैज्ञानिक अर्थ कई बार संकल्पना की समझ विकसित करने में अवरोध पैदा करते हैं। इसी संकलन में, डॉ. गुरजीत कौर ने इस विषय पर विस्तार में चर्चा की है।

इसी सन्दर्भ में मुले (2006) बहुत स्पष्ट रूप से बताते हैं कि आठवीं सदी के बाद भारत क्षेत्र में विज्ञान पिछड़ने लगा था। वे इसका सम्बन्ध जातिवाद के उदय से देखते हैं। उनके अनुसार उसके पहले का भारतीय वैज्ञानिक ज्ञान संस्कृत से अरबी में अनूदित हो कर यूरोप पहुँचा, यह सही है। परन्तु उसके बाद विज्ञान का विकास

तेजी–से यूरोप के देशों में हुआ। विज्ञान के विकास के साथ वैज्ञानिक शब्दावली विकसित हुई, चाहे वह लेटिन हो, या ग्रीक हो। हिन्दी में विज्ञान की किताबों के अनुवाद की एक प्रमुख बहस तकनीकी शब्दावली को ले कर भी है। क्या विज्ञान के शोध और विकास की ऐतिहासिक प्रक्रिया से बनी तकनीकी शब्दावली को अनुवाद करने का कोई मतलब दिखता है? ज़रूरी शायद यह है कि अनूदित या नयी गढ़ी तकनीकी शब्दावली के साथ ही अँग्रेज़ी/ ग्रीक/ लातिनी तकनीकी शब्दावली का उपयोग भी करने दिया जाये। पर शुद्ध भाषा के सन्दर्भ में यह एक नाजायज़ विचार माना जाता है। इस तरह की सोच शब्दावली के विकास को महज़ यान्त्रिक प्रक्रिया मानती है, जिसे अनुवाद से हल किया जा सकता है।

विज्ञान में भाषा की भूमिका जैसे विषय को ज़्यादा विस्तार से समझने की ज़रूरत है। यहाँ, इससे जुड़े मुद्दे को रेखांकित भर किया गया है।

संक्षेप में

वर्तमान भारत में सभी समझते हैं कि अंग्रेज़ी न केवल उच्च शिक्षा, विज्ञान, प्रौद्योगिकी, व्यावसायिक शिक्षा, रोज़गार इत्यादि की भाषा है, बल्कि यह सत्ता की भाषा भी है। इसीलिए जिन अभिभावकों का बस चलता है वे अपने बच्चों को अंग्रेज़ी माध्यम के स्कूलों में पढ़ाने का प्रयास करते हैं। यह भी वास्तविकता है कि इस कारण से उन लोगों के लिए निम्न दर्जे के अंग्रेज़ी माध्यम के स्कूलों और कोचिंग–कक्षाओं का बाज़ार फैलता जा रहा है जिनके पास अंग्रेज़ी सीखने के बेहतर मौक़े नहीं हैं। इस वस्तुस्थिति को मद्देनज़र रखते हुये स्कूलों में अंग्रेज़ी सिखाने के बेहतर तरीक़ों को शिक्षक–प्रशिक्षण का हिस्सा बनाना एक ज़रूरी मसला है। हालाँकि यह कह देना भी ज़रूरी है कि कम से कम हिन्दी क्षेत्र में हिन्दी पढ़ाने का तरीक़ा और भी बदतर है। इसलिए भाषा पढ़ने / पढ़ाने की प्रक्रिया पर गहन विचार करना ज़रूरी है। साथ ही भाषा–शिक्षण पर एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा बनाये गये प्रपत्र (एन.सी.ई.आर.टी., 2005) पर दोबारा सोचना ज़रूरी है।

इस सब के साथ अंग्रेज़ी सीखने के सकारात्मक कारण भी हैं जिन्हें स्वीकारना और समझना ज़रूरी है। ज्ञान हासिल करने के लिए कई नयी भाषाएँ सीखी जाती हैं जैसे, गुणाकर मुले ने भारतीय विज्ञान की समझ हासिल करने के लिए संस्कृत सीखी और दिल्ली विश्वविद्यालय के प्रो. विजय बहादुर सिंह ने जर्मन, ताकि वे मार्क्स के मौलिक लेखन को पढ़ सकें। हमारी विरासत अंग्रेज़ी भी है और समृद्ध भाषायी विविधता भी है। ऐसे में विज्ञान विषय की बेहतर समझ और पहुँच बनाने और अन्तर्राष्ट्रीय ज्ञान

हासिल करने के लिए उच्च शिक्षा को एक भाषी बनाये रखने का हट, चाहे वह भाषा हिन्दी हो या गोंडी हो या तमिल हो, न केवल अव्यावहारिक है बल्कि बहुभाषिता के विरुद्ध एक सैद्धान्तिक हट भी है। इसलिए :

- अंग्रेज़ी बाज़ार की भाषा है, सत्ता की भाषा है, औपनिवेशिक विरासत है पर साथ ही ज्ञान की भाषा भी है। ज्ञान की भाषा जैसी वास्तविकता के कारण विज्ञान की अंग्रेज़ी की पठन–पाठन सामग्री को अनूदित करना, वैज्ञानिकों द्वारा मौलिक लेखन अंग्रेज़ी के अलावा अन्य भाषाओं में करना इत्यादि ज़रूरी हो जाता है। पर, ज्ञान के प्रसार और, बाज़ार और रोज़गार की आवश्यकताओं के कारण अंग्रेज़ी को बेहतर ढंग से पढ़ाने (एन.सी.ई.आर.टी., 1.4, 2005) के मौक़े उपलब्ध होना भी उतना ही ज़रूरी है।
- स्कूली स्तर पर बहुभाषायी कक्षाएँ एक वास्तविकता मानी गयी है और पढ़ाने की पद्धतियाँ उसके अनुसार ही तय करने की सिफ़ारिश भी हुई है (एन.सी. ई.आर.टी., 1.3, 2005)। यह विमर्श महाविद्यालयीन और विश्वविद्यालयीन शिक्षा के लिए भी ज़रूरी है। भारत जैसे भाषायी विविधता वाले देश में उच्च शिक्षा एक भाषायी होना सिद्धान्ततः गलत है और व्यावहारिक रूप से असम्भव है।

सन्दर्भ सूची :

1. अग्रवाल, कैलाश (1995)। "इपिलॉग" गुप्ता, आर.एस., अनविता अब्बी और कैलाश एस. अग्रवाल, (सम्पा.) *'लैंग्वेज एंड स्टेट'* पुस्तक में, नयी दिल्ली, क्रियेटिव बुक्स।
2. बाल, जेसिका (2011)। "एनहैनसिंग लर्निंग ऑफ चिल्ड्रन फ्रॉम डाइवर्स लिंगुअल बैकग्राउंड्स रू मदरटंग बेस्ड बाइलिंगुअल ऑर मल्टीलिंगुअल एजुकेशन इन अर्ली इयर्स।" पेरिस : यूनेस्को।
3. क्लूयेव, बोरिस (1976)। *स्वतन्त्र भारत : जातीय तथा भाषायी समस्या*। मास्को : प्रगति प्रकाशन।
4. गुप्ता, आर. एस., अनविता अब्बी और कैलाश अग्रवाल (1995)। "इंट्रोडक्शन" 'लैग्वेंज एण्ड स्टेट' पुस्तक में, नयी दिल्ली : क्रियेटिव बुक्स।
5. कृष्णा (1995)। *इण्डियाज लिविंग लैंग्वेजेज : द क्रिटिकल इस्यूज,* नयी दिल्ली : अलाइड पब्लिशर्स।

6. देसाई, ए. आर. (1976)। *सोशल बैकग्राउण्ड ऑफ इण्डियन नेशनलिज्म,* बॉम्बे : पॉप्युलर प्रकाशन।
7. मुले, गुणाकर (2006)। *इतिहास, संस्कृति और साम्प्रदायिकता,* दिल्ली : यात्री प्रकाशन।
8. नायक, जे. पी. और सैयद नरूला (1976)। *भारतीय शिक्षा का इतिहास,* नयी दिल्ली : मैकमिलन।
9. शुक्ल, सुरेशचन्द्र (1996)। "फ्रॉम प्री–कोलोनियल टु पोस्ट–कोलोनियल : एजुकेशनल ट्रांजिसन्स इन सदर्न एशिया।" *इकनॉमिक एण्ड पोलिटिकल वीकली,* 31 (22) पृष्ठ संख्या 1344–49।
10. मिश्रा, सलिल (2007) "नेहरू एण्ड दि लैंग्वज क्वेश्चन।" *कन्टेम्परेरी पर्सपेक्टिव्स* 1(1):80–106।
11. हटनर–कोरास, एडम (2015).'द हिडन बायसेस ऑफ साईंसस यूनीवर्सल लैंग्वेज'.theatlantic-com@author@adam&huttner&koros.
12. जयराम, एन. (1993)।
13. एन.सी.ई.आर.टी. (1.3) (2005)। *पोजिशन पेपर नेशनल फोकस ग्रुप ऑन टीचिंग ऑफ़ इण्डियन लैंग्वेजेज,* नयी दिल्ली : नेशनल काउंसिल ऑफ एजुकेशनल रिसर्च एण्ड ट्रेनिंग।
14. एन.सी.ई.आर.टी. (1.4) (2005)। *पोजिशन पेपर नेशनल फोकस ग्रुप ऑन टीचिंग ऑफ इंग्लिश*। नयी दिल्ली : नेशनल काउंसिल ऑफ एजुकेशनल रिसर्च एण्ड ट्रेनिंग।
15. फोर्ड, एलन और डेविड पीट, एफ (1988)।'द रोल ऑफ लैग्वेज इन साईंस'। फ़ाउण्डेशन ऑफ़ फिजिक्स,वाल्यूम 18ः 1233।